RUSSIA WORKSHOP – JULY 2019
Kabīr session 2: death-transiency-delusion
ṬĪKĀS

We provide ṭīkās for each poem where available (2 or 1 or none) from these 2 sources:

1. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह, कबीर वाङ्मय: खण्ड २, सबद : भावार्थबोधिनी व्याख्या सहित। विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारानसी १९८१
2. माताप्रसाद गुप्त (संपादक), कबीर-ग्रंथावली । प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा १९६९.

Note: Often there are variations (usually but not always minor) between the texts these authors use and those in our ms. And we don't always agree with their interpretations. But overall their ṭīkās are very helpful to us.

J84 - S85#110

माताप्रसाद गुप्त, २०६

अर्थ — मनुष्य समझता है कि उसकी काया अमर है, किन्तु घर और घर-वात (घर के साज व सामान) दोपहरी की छाया है [जो बहुत अल्पकाल तक रहती है]। मार्ग (गमनीय) को त्याग कर वह कुमार्ग (अगमनीय) को देखता है, स्वयं मरता है, फिर भी अन्य के लिए रोता है । कुछ कर चुका है और कुछ-एक करना [शेष] है, किन्तु मूर्ख यह नहीं चेतता है कि मरण निश्चित है । जैसे जल का बिन्दु होता है उसी प्रकार का यह संसार है, इसके उत्पन्न होते और विनष्ट होते वेला (देरी) नहीं लगती है । पांच पंखुड़ियों (पंचतत्त्वों) का [के पुष्प जैसा] यह शरीर है, [जिनके झड़ने में देरी नहीं लगती है], इसलिए कबीर कृष्ण-कमल-दल का भ्रमर [हुआ] है ।

Fatehpur ms., in: पद सूरदासजी का, p. 155–156, pad 106 (Callewaert, Millenium Kabīr Vāṇī, p. 228–229, No. 110 : F6):

॥ राग गौडी ॥
अमर मेरी काय़ा नरु जानै ॥ जैसा घरी घरी व़ात दुपहर की छाय़ा नर जानै ॥
कछू एक काय़ौ क कछू एकरनै ॥ मुगधु न चेतै सिर ऊपरि मरनौ ॥
सुपना फिरि फिर देषि गरवानी ॥ अय़ाति सहीं फुनि जानी ॥
जल बुदबुद देषा यै संसार ॥ उपत षपत नहि लागै बारा ॥
पांच पषेरू एक सरीर ॥ कृस्न कमल दल भवर कबीरा
नरु जानै अमर मेरी काया नरु जानै ॥१०६॥

J87 - S88#114

जयदेव सिंह, पृ० १३०

संदर्भ — प्रस्तुत पद में कबीर ने साधारण लोगों के इस विश्वास पर प्रहार किया है कि "बैकुण्ठ" नामक विशेष आनंद का लोक है और यह बतलाया है कि सत्संग ही वास्तविक बैकुण्ठ है।

व्याख्या — कबीर कहते हैं कि सभी लोग जीवन का परम लक्ष्य बैकुण्ठ या स्वर्ग मानते हैं और वहीं पहुँचने की बात करते हैं। परन्तु न जाने यह वैकुण्ठ या स्वर्ग है कहाँ? प्राय: लोगों को तो एक योजन की सीमा तक का ज्ञान नहीं होता, किन्तु वे लम्बी-चौरी बातें करते हैं वैकुण्ठ की, जिसके ठौर-ठिकाने का कोई पता ही नहीं है। जब तक वैकुण्ठ में जा कर एसके सुख का किसी ने अनुभव न किया हो, तब तक शिस्त्रों के कहने और सुनने से उसका कैसे विश्वास किया जा सकता है? कबीर कहते हैं कि यह किसे समझाया जाय कि सत्संग ही वास्तविक वैकुण्ठ है।

माताप्रसाद गुप्त, पृ॰ १६०

अर्थ — [वैकुण्ठ] चलने को सब कोई कहता है, किन्तु मैं यह नहीं जानता हूँ कि वैकुण्ठ कहाँ पर है। लोग एक योजन प्रमाण तक [की] तो जानते नहीं हैं, और अपनी [लम्बी-चौरी] बातों में वैकुण्ठ का बखान (वक्खाण – वर्णन) करते हैं! किन्तु जब तक वैकुण्ठ की आशा (अपेक्षा) है, तब तक हरि के चरणों में निवास नहीं हो सकता है। किसी के [वैकुण्ठ के बारे) में कहने-सुनने से कैसे प्रतीत कीजिए जब तक आप ही वहाँ न जाया जाए? कबीर कहता है, यह किस से कहा जाए कि साधु-संगति ही वैकुण्ठ है।

J80 - S81#106

माताप्रसाद गुप्त पृ० २०४

अर्थ — हे राम, [यदि तुम धन दो भी तो] थोड़े दिनों [के जीवन] के लिए धन का क्या करना है ? इसमें धंधा (द्वंद्व – झगड़ा) बहुत है और अत्यधिक मरना [-खपना] है । कोटिध्वज (करोड़पति) साहुओं (महाजनों) और हस्ती-बंध राजाओं और कृपणों को धन किस काम का होता है ? [उन्होंने] धन के गर्व में राम को न जाना और नंगे होकर यम पर (से) गुज़ारिश की (निवेदन किया) ! कबीर कहता है, हे भाई, चेत करो; जीव चला गया, तो कुछ भी साथ नहीं जाता है ।

J35 - S35#43

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७३

अर्थ — हे पंडित जनो, कहो, कौन मरता है, और यह हमसे समझा कर कहो । [प्राणी के] मरने पर मिट्टी (काया) मिट्टी में समा रहती है, तथा पवन (प्राणों) पवन संग लगा लेता है । कबीर कहता है, हे गुणी पंडितो, सुनो, रूप [ही] मरता है, यह समस्त जगत् देखता है ।

J33 - S33#41

माताप्रसाद गुप्त, १७२

अर्थ — मैं न मरूंगा, संसार भले ही मरेगा, कड़योंकि मुझे वह जीवन-दाता मिल गया है । अब मैं न मरूंगा, [यद्यपि] मरने से मन मान गया है; वे ही मृत हुए हैं जिन्होंने राम को नहीं जाना है । शाक्त [ही] मरते हैं, संत-जन जीवित रहते हैं, क्योंकि ये [पात्र] भर-भर कर राम-रसायन पीते [रहते] हैं । हरि मरेगा तो वह हम भी मरेंगे, और यदि हरि नहीं मरता है, तो हम क्यों मरेंगे ? कबीर कहता है, मैंने मन की मन (परम मन) से मिला दिया है, इसलिए मैंने अमर होकर सुख-सागर प्राप्त कर लिया है ।

जयदेव सिंह, ४१४

शब्दार्थ – साकत = शाक्त । जिआवनहारा = अमरत्व प्रदान करने वाला, प्रभु ।

संदर्भ – इस पद में बताया गया है कि भक्ति ही वह संजीवनी है जिससे अमरत्व प्राप्त हो सकता है ।

व्याख्या – कबीर कहते हैं कि संसार में सभी मर जाएंगे, किन्तु भक्त नहीं मरेंगे, क्योंकि भक्त को अमरत्व प्रदान करने वाला प्रभु मिल गया है । शक्ति के उपासक शाक्त भी मर जाते हैं, किन्तु प्रभु के भक्त राम-रसायन का पान करके जीवित रहते हैं । भक्ति के द्वारा भक्त और प्रभु का सायुज्य हो जाता है । इसलिए भक्त मरने का प्रश्न ही नहीं रह जाता । यतः हरि नहीं मरते, अतः भक्त कैसे मरेगा ? कबीर कहते हैं कि भक्त का आत्म-तत्व परमात्म-तत्व से मिल जाता है । इस प्रकार वह अमर होकर असीम ब्रह्मानंद का अनुभव करता है ।

टिप्पणी – **राम रसाइंन** – वैद्यक के अनुसार 'रसायन' वह औषध है जिसके प्रयोग से काया क्षीण नहीं होती । राम रसायन वह औषध है जिससे अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

J45 - S45#57

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १८४

अर्थ — इब (अब) तू ही है, मैं कुछ नहीं हूं; पंडित पढ़-पढ़ कर अभिमान (ज्ञानाभिमान) में नष्ट होते हैं । जब तक मैं "मैं, मैं" करता रहा, तब तक मैं कर्त्ता को नहीं पहचान सका । कबीर कहता है, ऐ नरनाथ, सुनो; न मैं जीवितों में हूं और न मृतों में मैं जीवन्मृत हूं ।

* * * * *

J82 - S83#108

माताप्रसाद गुप्त, २०५

अर्थ — इस जगत् में 'मेरी'-'मेरी' करते हुए लोग मोह तथा मात्सर्य [ही] तनु में धारण करते हैं । पिछले समयों में जो पीर और मुकद्दम (प्रधान अथवा प्रमुख) होते थे, वे भी इसी प्रकार ['मेरी'-'मेरी'] करते हुए गए । किसका कोई मामा, पुनः किसका कोई चाचा, किसका कोई पंगुरा (पुत्र) है और किसकी कोई जोय (योजिता – स्त्री) है ? यह संसार तो एक बाज़ार मांडा (लगाया) हुआ है जिसको कोई [हरि का] जन ही जानेगा । मैं परदेशी यहां किसको पुकारूँ ? यहां मेरा कोई नहीं है । इस संसार को पूरा-पूरा ढूंढ कर देख लिया, मुझे तो भरोसा [ऐ स्वामी,] एकमात्र तेरा है । जो हलाल करके खाते हैं और हरांम निवारण करते हैं, उनको भी बिहिश्त (स्वर्ग) होता है, किन्तु पंचतत्त्व का कर्म जो नहीं जानता है, वह दोज़ख़ (नर्क) में ही पड़ेगा । कुटुंब के लिए तू पाप कमाता (कर्म करता) है, और तू समझता है कि घर 'मेरा' है, किन्तु ये सब आप (आत्म) स्वार्थ के लिए मिले हैं, यहाँ पर कोई तेरा नहीं है ! [भव-] सागर से उतरने का पथ संवारो (ठीक करो), किसी का बुरा नहीं करना [चाहिए] । कबीर कहता है, हे संतो, सुनो, स्वामी को जवाब भरना (देना) है (होगा) ।

J86 - S87#113

जयदेव सिंह, पृ० १६४-१६५

शब्दार्थ – रसना = जिह्वा । उपजत = जन्म । विनसत = मरण ॥ भरमत = भटकते हुए । कंधि = कंधे पर । माया = धन-सम्पत्ति । प्रवांनां = प्रमाण, दृढ धारणा ।

संदर्भ – मानव जीवन की नश्वरता दर्शाते हुए कबीर उपदेश देते हैं कि राम नाम का सुमिरन करके जीवन को सफल बनाना चाहिए ।

व्याख्या – कबीरदास उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे मानव ! यदि तू अपनी जिह्वा से राम का सुमिरन नहीं करेगा तो जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहेगा और भिन्न-भिन्न योनियों में भटकता फिरेगा । काल तेरे कंधे पर है अर्थात् तेरे सिर पर मंडरा रहा है । इसलिए पूर्ण सुख से कोई जीवन यापन नहीं कर सकता । निद्रा में भी मृत्यु का भय बना रहता है । राजा हो या रंक दोनों परेशानी की स्थिति में रहते हैं । यह जीवन वृक्ष की छाया के समान अस्थिर है । जिस धन-सम्पत्ति पर तू गर्व करता है, प्राण निकल जाने पर वह किसकी है ? तूने जीवन में किसी दृढ आदर्श को लेकर सुकृत या पुण्य कर्म नहीं किया । मरने पर किसी की क्या गति होती है ? इस रहस्य को कौन जानता है ? अतः मरने पर तेरी क्या गति होगी ? इसे कौन जानता है ? शरीर रूपी सरोवर में जीवात्मा रूपी हंस विद्यमान है । सहस्त्रार कमल से जो रस झरता रहता है, वह राम-रसायन है । हे जीव ! तुम उसको पीकर पुष्ट हो । विषय-वासना, धन-सम्पत्ति के चक्कर में मत पड़ो ।

माताप्रसाद गुप्त, पृ० २२०

अर्थ – यदि तेरी रसना राम न कहेगी, तो तू उत्पन्न होता, विनष्ट होता और भटकता ही रहेगा । जैसी तू तरुवर की छाया देखता है [वैसी ही यह माया है], प्राण जाने पर तू ही कहे माया किसकी होती है । यदि जीवित रहते हुए किसी ने कुछ प्रमाण (प्रामाणिक रूप से) न किया, तो मृत होने पर किसी के मर्म को कोई क्या जान सकता है ? क्योंकि काल प्राणी के कंधे पर [बैठा हुआ] है, प्राणी सुख से नहीं सो सकता है, राजा और रंक दोनों मिल कर रोते हैं । जैसे सरोवर में हंस होता है, उसी प्रकार शरीर में कमल (काल?) है, इसलिए कबीर राम-रसायन का पान करता रहता है ।

J83 - S84#109

माताप्रसाद गुप्त, २०५-२०६

अर्थ — अरे, इसमें 'मेरा' और 'तेरा' क्या है, [लोग] 'मेरा घर' कहते हुए लज्जा से नहीं मरते हैं ! यह चार प्रहर की निशा का भोर (प्रभात) है; जैसे तरुवर पर पक्षियों का बसेरा होता है, [उसी प्रकार के यह घर है] । जैसे वणिक् (दूकानदार) हाट (दूकान) का प्रसार करता है, उसी प्रकार समस्त जगत् का वह निर्माता है । ये (हिन्दू) [शव] को लेकर जलाते हैं, वे (तुर्क) उसे लेकर गाड़ते हैं, इस दुःख से मैंने इन दोनों घरों (कर्मों) को [२०६] छोड़ दिया । कबीर कहता है, हे लोगो, सुनो, हमारा और तुम्हारा (सबका) विनाश कर वही [शेष] रहेगा ।

J77 – S78#103

माताप्रसाद गुप्त पृ० २०१

अर्थ — देखो, यह शरीर [अंत में] जलता है (जलाया जाता है) । हे भाई, घड़ी-प्रहर [भले ही] बिलम लो (रुक लो), [फिर तो] यह जलता ही है । किस लिए तूने इतना प्रसार किया जब यह तनु जल-बल कर राख होगा ? नव तनु (नव द्वारों) तथा द्वादश अंगों में अग्नि लगी हुई है, मूर्ख फिर भी नख से शिखा तक जाग कर नहीं चेत करता है ! काम क्रोधादि के विकार घट (शरीर) में भरे हुए हैं, [जिनमें] संसार अपने-आप जलता है । कबीर कहता है, "मैं मृतक-सदृश (जीवन्मृत) हूं, और राम-नाम [के स्मरण] से मेरा अभिमान (देहाभिमान) छूट गया है ।"

J72 – S73#96

माताप्रसाद गुप्त, पृ० १९८

अर्थ – जीव [एक दिन] चला जाएगा, यह मैंने जान लिया है, क्योंकि जो भी देखे गए, वे पुनः नहीं देखे गए, और वे [कब्र की] मिट्टी में ही लिपटे (लिपट कर सोए) । वल्कल-वस्त्र कितना भी पहना जाए, [क्या होता है] ? वन-खंड में वास करते हुए तप करने से [भी] क्या [होता] है ? ऐ मूर्ख, पाषाण [की प्रतिमा] पूजने से क्या [होता] है, और गात्र (शरीर) पर जल डालने (स्नान करने) से क्या [होता] है ? कबीर कहता है, सुरों और मुनियों ने उपदेश किया कि तू लोगों को [अध्यात्म-] पथ पर लगा । ऐ संतो, [मेरी बात] सुनो, हे भक्त जनो, [हरि का स्मरण] करो, हरि [के स्मरण] के बिना तुम जन्म गंवा रहे हो ।

जयदेव सिंह, पृ० १५२–१५३

शब्दार्थ – जिअ = जीव । जाहिगा = चला जाएगा । पेख्या = देखा । बस्तर = वस्त्र । बलकल = वल्कल, पेड़ की छाल । पहिरवा = पहनावा । मुगध =
+मुग्ध, मूर्ख । गाता = गात्र, शरीर । सगलो = सकल ।

संदर्भ – प्रस्तुत पद में बताया गया है कि कोई व्यक्ति चाहे जितना तप, पूजा करे, किन्तु संसार से जीव का जाना अनिवार्य है । प्रभु-भक्ति से ही वह संसार के आवागमन से बच सकता है ? ।

व्याख्या – कबीर कहते हैं कि मैंने अच्छी तरह से समझ लिया है कि इस जीव को एक दिन संसार छोड़कर जाना है । सभी की मृत्यु अवश्यंभावी है । मैंने जिस किसी को यहाँ से जाते देखा है, उसे फिर यहाँ वापस आते नहीं देखा । शरीर मिट्टी में मिल जाता है और जीव यहाँ से चला जाता है ।

मनुष्य चाहे जितनी घोर तपस्या और अर्चना करे, किन्तु वह मृत्यु से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता । वह चाहे वृक्ष की छाल पहनकर तपस्या करे अथवा जंगल में जाकर वास करे, किन्तु उसे इस संसार से जाना ही होगा । हे मूर्ख मानव ! तू चाहे कितना ही प्रस्तर-विग्रह की पूजा करे और चाहे जितना जल में स्नान करके अपने को स्वच्छ करे, किंतु मृत्यु से बच नहीं सकता । कबीर कहते हैं कि बड़े-बड़े ज्ञानियों, योगियों और उपदेशकों के बाह्याचार केवल सांसारिक धंधे हैं । इनसे आत्मलाभ नहीं हो सकता और न

व्यक्ति मृत्यु से बच सकता है । अतः भगवान की भक्ति करो, जिससे इस मरणशील संसार में आना ही न पड़े । राम नाम के जप के बिना यह सारा संसार माया द्वारा प्रवृत्त अंधकार में भटक रहा है ।

J75 – S76#101

माताप्रसाद गुप्त, पृ० २००

अर्थ — ऐ मन, यह तुम (शरीर) काग़ज़ का पुतला है । [जल की] बूंद लगती है तो यह क्षण [मात्र] में विनष्ट हो जाता है, तब [इस पर] तू इतना गर्व क्या (क्यों) करता है ? अंधे (अज्ञानी) मिट्टी खोदते और दीवालें उसारते (उत् + सारय् = उठाना) हैं और कहते हैं कि 'यह घर मेरा है ।' किन्तु जब तलब (तलबीनामा *summons; to summon, send for*– आदेश-पत्रिका) आती है, और इसे बांध कर [यम-दूत] ले चलते हैं ,यह पुनः [इस जगत् में] फेरी नहीं करेगा (करता है) । खोटे कर्म और कपट कर इसने धन जोड़ा और उसे लेकर धरती में गाड़ा । जब श्वास को घट (शरीर) में रोक दिया गया ,और उसका निकलना बंद हो गया ,वह सब [गाड़ा हुआ धन] स्थान-स्थान पर छोड़ दिया गया । कबीर कहता है , नाटक के नट थक गए , मर्दल कौन बजाए ? पखावजी (?) चले गए और बाज़ी उज्झरिअ (क्षिप्त ,परित्यक्त) हुई , फिर कौन किसी के [घर] आता है?

नाटक के नट (अभिनेता) शरीर के विभिन्न अंग हैं, मर्दल बजाने वाले, पखावजी आदि भी शरीर के अंग हैं।